National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 2; May 2018; Page No. 52-53

भारतीय दर्शन में ख्यातिवाद का संक्षिप्त विश्लेषण

Amit Kumar Singh
Research Scholar, Department of Philosophy, University of Allahabad, Uttar Pradesh, India

प्रस्तावना

दैनिक जीवन में प्रायः हमारे समक्ष ऐसे अनुभव उपस्थित होते हैं जिसमें हम किसी वस्तु को कोई और वस्तु समझ लेते हैं जैसे– रात के अन्धेरे में पड़ी हुई किसी रस्सी को हम सर्प समझ लेते हैं इसी प्रकार के अनुभवों की व्याख्या भारतीय दर्शन में ख्यातिवाद के अन्तर्गत किया गया है। लोक व्यवहार में ज्ञान के अभाव को अज्ञान कह दिया जाता है लेकिन अज्ञान अपने आप में ज्ञान का अभाव होने के साथ–साथ एक सत्ता भी है जैसे कोई रेगिस्तान में मृगमरीचिका को जल समझता है तो यह ज्ञान का अभाव तो है लेकिन साथ ही साथ भ्रम का एक रूप भी है। ज्ञान के दो भेद माने गए हैं– स्मृति और अनुभव। अनुभव के भी दो प्रकार हैं– यथार्थ एवं अयथार्थ। यथार्थ अनुभव को प्रमा और अयथार्थ अनुभव को अप्रमा कहते हैं। अयथार्थ अनुभव तीन प्रकार का होता है– संशय, विपर्यय और तर्क। जो 'अर्थ' जहाँ नहीं है, यदि वहाँ पर उस अर्थ के होने का अनुभव हो तो उस अनुभव को अयथार्थ कहा जाता है जैसे– रस्सी साँप नही होती पर साँप का अयथार्थ अनुभव इसमें भी होता है। इस अयथार्थ अनुभव को ही विपर्यय की संज्ञा दी गई है। भारतीय दर्शन में इसका प्रचलित नाम ख्यातिवाद है। ख्याति शब्द का मूल अर्थ ज्ञान है किन्तु ख्यातिवाद शब्द का प्रचलन भ्रम से सम्बन्धित सिद्धान्त के लिए रूढ़ हो चुका है। यह सिर्फ भारतीय दर्शन के लिये ही नहीं बल्कि किसी भी दर्शन में एक महत्वपूर्ण ज्ञानमीमांसीय समस्या मानी गई है क्योंकि प्रत्यक्षवाद, अनुभववाद, वस्तुवाद तथा स्वतः प्रामाण्यवाद जैसे सिद्धान्तों के समक्ष यह एक चुनौती है।

भारतीय दर्शन में ख्यातिवाद से सम्बन्धित तीन प्रकार की व्याख्याएँ मिलती हैं– वस्तुवादी मत, विज्ञानवादी मत तथा अनिर्वचनीयतावादी मत। वस्तुवादी मत वस्तुवाद की रक्षा करने के लिए इस समस्या का समाधान करना चाहते हैं। वस्तुवादियों में पहला वर्ग प्रभाकर मीमांसा, विशिष्टाद्वैतवाद तथा पूर्व सांख्य दर्शनों का है जो भ्रम की तात्विक सत्ता स्वीकार नहीं करते। दूसरा वर्ग भट्ट मीमांसा, न्यायवैशैषिक, जैन तथा उत्तर सांख्य दर्शनों का है जो वस्तुवादी होने के बावजूद भ्रम को मिथ्या ज्ञान मानकर अपने वस्तुवाद से समझौता कर लेते हैं। विज्ञानवादी मत योगाचार विाानवाद का है। अनिर्वचनीयतावादी मत माध्यकि शुन्यवाद तथा अद्वैत वेदान्त का है जिसके अनुसार भ्रम सत् असत् आदि कोटियों से विलक्षण व अनिर्वचनीय है। इन सबकी व्याख्याएं निम्न प्रकार हैं–

प्रभाकरमीमांसा का अख्यातिवाद

प्रभाकर का भ्रम विचार अख्यातिवाद कहलाता है। प्रभाकरमीमांसा में भ्रम की तात्विक यथार्थता को ही अस्वीकार किया जाता है। इसमें भ्रम एक ज्ञान नहीं है बल्कि दो ज्ञानों का मिश्रण है। भ्रम में दो ज्ञान होते हैं और उनके दो अलग–अलग विषय होते हैं। भ्रम में इन दोंनो ज्ञानों के भेद का और उनके अलग–अलग विषयों के भेद का ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार हम भ्रम में यह बात भूल जाते हैं कि ये दो ज्ञान हैं जैसे– हम रस्सी के स्थान पर सर्प देखते हैं तो कहते है कि यह सर्प है तो यह एक ज्ञान नहीं है बल्कि दो ज्ञानों का सम्मिश्रण है। इसमें 'यह' का और इसके साथ ही सर्प की उन विशेषताओं का जो कि रस्सी में भी विद्यमान है, वास्तव में प्रत्यक्ष होता है। इन विशेषताओं का प्रत्यक्ष हमारे मन में अतीत में अनुभूत सर्प के संस्कार को जगाकर सर्प का स्मरण करा देता है। इस प्रकार रज्जु–सर्प का भ्रम प्रत्यक्ष और स्मृति का सम्मिश्रण है। प्रभाकर का कहना है कि जब हम स्मृतिदोष के कारण रज्जु के प्रत्यक्ष ज्ञान और सर्प के स्मरणात्मक ज्ञान में भेद नहीं कर पाते हैं तब यह भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रभाकर के मत में भ्रम नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। यहाँ भ्रम के स्थान पर ज्ञान का अभाव मात्र रहता है कोई भावात्मक वस्तु नहीं, जिसे हम भ्रम की संज्ञा दे सकें। अतः भ्रम भेद का अग्रहण है, मिथ्या ज्ञान नहीं।

रामानुज व पूर्व सांख्य का सत्ख्यातिवाद

रामानुज और पूर्वसांख्य ने भी भ्रम को ततवता अस्वीकार किया है। रामानुज के अनुसार जगत् का विकास पंचीकरण विधि से होता है जिसके कारण प्रत्येक महाभूत में आधा अंश अपना जबकि 1/8–1/8 अंश अन्य महाभूतों का होता है। सांख्य के अनुसार भी प्रकृति के विकास में जब तन्मात्राओं से पंचमहाभूत बनते हैं तो विभिन्न महाभूतों में एक–दूसरे का मिश्रण होता है। इस कारण रस्सी में रस्सी का मुख्यांश तथा सर्प का सीमितांस वस्तुतः होता है। भ्रम का अर्थ मात्र इतना है कि हमें रस्सी के मुख्यांश के स्थान पर सर्प के सीमितांश का प्रत्यक्ष होता है।

कुमारिल का विपरीतख्यातिवाद

कुमारिल भी प्रभाकर की भाँति यथार्थवादी हैं किन्तु वे प्रभाकर के भ्रम विषयक विचार को अस्वीकार करते हैं। कुमारिल भी प्रभाकर की भाँति भ्रम को दो भगों में विभाजित करते हैं– रस्सी में सर्प का भ्रम होने पर 'यह सर्प है' ऐसा अनुभव होता है। इस भ्रम में यह प्रत्यक्ष का विषय है और सर्प स्मृति का विषय है। भ्रम का कारण यह नहीं है कि हम दोनों में भेद नहीं कर पाते बल्कि भ्रम इस कारण होता है कि हम दोनों को मिलाकर एक कर देते हैं। 'यह सर्प है', इस भ्रम में 'यह'(उद्देश्य) और 'सर्प'(विधेय) दोनों ही सत्य है। भ्रम इस कारण होता है कि हम दो सत्, किन्तु पृथक–पृथक पदार्थों में उद्देश्य–विधेयात्मक सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं। इसी सम्बन्ध के कारण रस्सी में सर्प का भ्रम होता है। परिणामस्वरूप 'यह' का 'सर्प' के रूप में विपरीत ज्ञान होता है। इस प्रकार भ्रम दो ज्ञान न होकर एक ही ज्ञान है।

न्याय का अन्यथाख्यातिवाद

न्याय दर्शन अन्य भारतीय दर्शनों की तरह भ्रम की समस्या पर

गम्भीरता पूर्वक विचार करता है। न्याय दर्शन का भ्रम सम्बन्धी मत अन्यथा ख्यातिवाद कहलाता है। यहाँ अन्यथा के दो अर्थ हैं– अन्यत्र और अन्यरूप में। भ्रम में अन्यत्र एवं अन्य रूप में देखे गए विषय का यहाँ इस रूप में प्रत्यक्ष होता है। जब हम रस्सी को सर्प के रूप में देखते हैं तो सामने स्थित वस्तु अर्थात् रस्सी अन्य रूप में (सर्प के रूप में) प्रतीत होती है और प्रतीत होने वाली वस्तु अर्थात् सर्प की भी वास्तविक सत्ता है किन्तु अन्यत्र या अन्य स्थान पर। नैयायिकों के अनुसार ऐसा होने का कारण ज्ञान लक्षण प्रत्यक्ष है जो अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद है। किसी वस्तु को देखते ही उसके गुणों की समाानता के कारण किसी अन्य वस्तु का स्मरण हो जाता है तथा स्मृत वस्तु को हम प्रत्यक्ष मान बैठते हैं। रस्सी और सर्प में भ्रम इसलिए होता है कि दोनों के गुण जैसे मोटाई, गोलाई आदि गुण एक जैसे हैं।

जैन तथा उत्तर सांख्य दर्शन का सत्–असत्–ख्यातिवाद

जैन दर्शन तथा उत्तर सांख्य भ्रम को सत् तथ असत् ज्ञान का मिश्रण मानते हैं और इसलिए इनके मत को सत्–असत् ख्यातिवाद कहा जाता है। इसके अनुसार भ्रम से सम्बन्धित वस्तुएं और उनका ज्ञान सत्य है, किन्तु उनका सम्बन्ध सत्य नहीं है। तात्पर्य यह है कि भ्रम में एक अंश सत्य होता है, किन्तु दूसरा अंश असत्य होता है जैसे रज्जु सर्प भ्रम में रज्जु के स्थान पर सर्प का मिथ्या प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार भ्रम दो सत्य ज्ञानों के असत्य सम्बन्ध से उत्पन्न होता है। रज्जु सर्प भ्रम में रज्जु तथा सर्प के ज्ञान अलग–अलग सत् हैं, इसलिए यह सत्–ख्याति है किन्तु दोनों ज्ञानों का सम्बन्ध असत् है इसलिए यह असत् ख्याति है। तात्पर्य है कि भ्रम का कुछ अंश सत् तथा शेष अंश असत् है, इसलिए भ्रमविषयक इस सिद्धान्त को सत्–असत् ख्यातिवाद कहते हैं।

योगाचार विज्ञानवाद का विज्ञानख्याातिवाद या आत्मख्यातिवाद

योगाचार विज्ञानवादियों ने आत्मतत्व की सत्ता स्वीकार ही नहीं की है। उनके अनुसार कोई बाह्य वस्तु है ही नहीं सिर्फ विज्ञान मात्र की सत्ता है इसलिए इनके भ्रम सम्बन्धीमत को विज्ञानख्यातिवाद कहना उचित है। इस मत के अनुसार रज्जु सर्प भ्रम का मूल कारण यह है कि हमें सर्पाकार विज्ञान सर्प नामक वस्तु के रूप में प्रतीत होता है। जब हम रस्सी को रस्सी के रूप में देखते हैं तब भी हम भ्रम में ही होते हैं क्योंकि तब हमें रस्सी का विज्ञान रस्सी नामक वस्तु के रूप में प्रतीत होता है। वस्तुतः सत्त सिर्फ विज्ञानों की है, उन्हें बाह्य वस्तु समझना ही भ्रम है। रज्जु सर्प आदि भ्रम परिकल्पित स्तर के हैं जिनका सम्बन्ध क्लिष्ट–मनोविज्ञान से है जबकि बाह्य जगत् में विश्वास परतन्त्र स्तर का भ्रम है जिनका सम्बन्ध आलय विज्ञान से है। वास्तविक सत्ता अर्थात् परिनिष्पन्न के स्तर पर यह विज्ञान भेद रहता ही नहीं।

शून्यवाद का शून्यताख्यातिवाद या असत्–ख्यातिवाद

शून्यवाद किसी भी आनुभविक व्स्तु को सत् नहीं मानता। शून्यता ख्यातिवाद के अनुसार वास्तविक सत्ता सिर्फ प्रपंचशून्य निरपेक्ष तत्व की है तथा वह बुद्धि की सभी कोछियों से परे है। अनुभव में आने वाली प्रत्येक वस्तु स्वभावशून्य है। वह सत् नहीं है क्योंकि उसका विभिन्न कालों में बाध हो जाता है। वह असत् भी नहीं है क्योंकि उसका अनुभव होता है। सत् और असत् एक साथ संयुक्त हो ही नहीं सकते तथा न सत् न असत् तो कल्पना के ही परे हैं। अतः जगत् की सभी वसुएं स्वभावशून्य हैं तथा भ्रम के समान हैं। इसके दो वर्ग हैं– लोक संवृत्ति तथा मिथ्या संवृत्ति। रज्जु सर्प जैसे व्यक्तिगत भ्रम मिथ्या संवृत्ति के अन्तर्गत आते हैं।

शंकराचार्य का अनिर्वचनीयख्यातिवाद

अद्वैत वेदान्त में भ्रम सम्बन्धी सिद्धान्त को अनिर्वचनीय ख्यातिवाद कहते हैं। इसमें भ्रम को अध्यास कहा गया है जिसका अर्थ है– अतत् में तत् की प्रतीति। अध्यास के तीन पक्ष हैं– अधिष्ठान, अध्यस्त वस्तु तथा आरोप या तदात्म की क्रिया। इन तीनों के एकसाथ होने पर भ्रम होता है। भ्रम के दो प्रकार हैं– प्रतिभास तथा व्यवहार। रज्जु सर्प जैसे अल्पकालिक व व्यक्तिगत् भ्रम प्रतिभास के अन्तर्गत आते हैं जिसमें रज्जु अध्ष्ठिान है और सर्प अध्यस्त वस्तु। अध्यस्त वस्तु सत् नहीं है क्योंकि यह त्रिकाल अबाधित नहीं है, यह असत् भी नहीं है क्योंकि इसका अनुीाव होता है। सत् और असत् परसपर विरोधी हैं जबकि न सत् और न असत् कल्पना के परे है। अध्यस्त वस्तु के बुद्धि की चारों कोटियों से अनिर्वचनीय होने के कारण इस मत को अनिर्वचनीय ख्यातिवाद कहा जाता है। भ्रम का कारण माया या अविद्या है जिसके दो पक्ष हैं– आवरण तथा विक्षेप। आवरण के कारण अधिष्ठान का वास्तविक स्वरूप ढ़क जाता है और विक्षेप के कारण अध्यस्त वस्तु की प्रतीति होती है। अतः भ्रम सिर्फ अज्ञान या अपूर्ण ज्ञान नहीं है, बल्कि अतत् में तत् की प्रतीति होने से मिथ्या ज्ञान है।

उपरोक्त सभी मतों का विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि प्रभाकर, पूर्वसांख्य तथा रामानुज के सिद्धान्त में यह समस्या है कि अपने कट्टर वस्तुवादी दृष्टिकोण के कारण ये दर्शन भ्रम की तात्विक सत्ता ही नहीं स्वीकार करते। नैयायिक आदि वस्तुवादी भ्रम को नकारते तो नहीं हैं किन्तु ज्ञानलक्षण प्रत्यक्ष जैसी कल्पना के आाधार पर वस्तुवाद की रक्षा करना चाहते हैं जो कि गलत है। जैन व उत्तर सांख्य का सिद्धान्त अति सरलीकरण का शिकार हो गया है। विज्ञानवाद की मूल समस्याा यह है कि यह बाह्य जगत् को पूर्णतः असत् मानता है और व्यक्ति के आनुभविक ज्ञान तथा लोक व्यवहार का खण्डन करता है। अनिर्वचनीय ख्यातिवाद और शून्यता ख्यातिवाद दोनों की व्याख्या लगभग समान है किन्तु शंकर ने प्रतिभास को अनुभव के कारण सत् का दर्जा दिया है जबकि शून्यवाद में ऐसा नहीं दिखाई पड़ता। शंकर की व्याख्या आवरण तथा विक्षेप के माध्यम से भ्रम में निहित अज्ञान तथा मिथ्या ज्ञान का भी समन्वय करती है। अतः अनिर्वचनीय ख्यातिवाद को भ्रम से सम्बन्धित उपरोक्त सभी व्याख्याओं में सर्वश्रेष्ठ व्याख्या माना जा सकता है।

सन्दर्भ

1. सांख्यसूत्र– 5/56
2. सांख्यसूत्र– 2/33
3. प्रमाणसमुच्चय, 1/2
4. काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, कारि० 8
5. न्यायसूत्र
6. मुक्तावली, कारि० 65
7. शास्त्रदीपिका, पार्थसारथी मिश्र, तर्कपाद
8. ऋजुविमला, पृ० 19–20
9. प्रकरणपंचिका, पृ० 43
10. नयविवेक, पृ० 86–93
11. तंत्ररहस्य, पृ० 2–5
12. श्रीभाष्य, 1/1/1
13. यतीन्द्रमतदीपिका, पृ० 57